SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
VOL. 4, ISSUE 1, JULY 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

कृषि, शिल्प उत्पादन एवं बाजार अर्थव्यवस्था: प्राचीन भारत के व्यापार की नींव

सुमन कुमार[1], प्रो. (डॉ.) गिरीश चन्द्र पाण्डेय[2]

[1]शोधार्थी, इतिहास विभाग, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर (बिहार)
[2]प्रोफेसर, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर (बिहार)

सारांश

प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था कृषि, शिल्प उत्पादन एवं बाजार व्यवस्था के परस्पर समन्वित आधार पर विकसित हुई, जिसने आंतरिक एवं बाह्य व्यापार की सुदृढ़ नींव स्थापित की। कृषि अधिशेष ने शिल्प उद्योगों तथा व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया, जबकि शिल्प उत्पादन ने कृषि उत्पादों का मूल्यवर्धन कर उन्हें स्थानीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुँचाया। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य प्राचीन भारत की आर्थिक संरचना में कृषि, शिल्प उत्पादन तथा बाजार अर्थव्यवस्था की परस्पर निर्भरता का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन ऋग्वेद, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, जातक कथाओं, अशोक के शिलालेख, Periplus of the Erythraean Sea तथा फाह्यान एवं ह्वेनसांग के यात्रा-वृत्तांत जैसे प्राथमिक स्रोतों तथा आधुनिक ऐतिहासिक अध्ययनों पर आधारित है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि श्रेणी संगठन, राज्य संरक्षण, कर व्यवस्था, मुद्रा प्रणाली तथा व्यापारिक मार्गों के विकास ने उत्पादन, विनिमय और बाजार व्यवस्था को संगठित स्वरूप प्रदान किया। ताम्रलिप्त, मुजिरिस, भरुकच्छ तथा वाराणसी जैसे व्यापारिक केन्द्रों ने भारत को एशिया, रोम तथा अन्य क्षेत्रों से जोड़कर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सुदृढ़ किया। कृषि, शिल्प एवं व्यापार के इस त्रिकोणीय संबंध ने न केवल आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा दिया, बल्कि नगरीकरण, सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा राज्य की आर्थिक स्थिरता को भी सुदृढ़ किया। निष्कर्षतः, प्राचीन भारत की व्यापारिक उन्नति कृषि, शिल्प उत्पादन और सुव्यवस्थित बाजार व्यवस्था के समन्वित विकास का परिणाम थी, जिसने भारत को प्राचीन विश्व की प्रमुख आर्थिक शक्तियों में स्थापित किया।

प्रमुख शब्द: प्राचीन भारत, कृषि, शिल्पकला, बाजार व्यवस्था, अधिशेष उत्पादन, वस्तु-विनिमय प्रणाली, मुद्रा, आंतरिक व्यापार, बाह्य व्यापार, आर्थिक समृद्धि ।

1. प्राचीन भारत में कृषि की भूमिका

प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सशक्त तथा स्थायी आधार कृषि रही है। यह केवल आजीविका का साधन नहीं थी, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन का केंद्रीय तत्व भी थी। इसी कारण भारत को प्राचीन काल से ही 'कृषि प्रधान देश' कहा जाता था। कृषि ने मानव जीवन को स्थायित्व प्रदान किया और घुमंतू जीवन से स्थायी बसावट की ओर संक्रमण संभव बनाया, जिसके परिणामस्वरूप ग्राम, नगर और राजधानियाँ विकसित हुईं। गंगा, सिंधु, गोदावरी और कावेरी जैसी प्रमुख नदी घाटियों में उन्नत कृषि उत्पादन ने स्थिर बस्तियों और नगरीय सभ्यताओं के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वैदिक साहित्य, पुराण, महाभारत, रामायण और कौटिल्य का अर्थशास्त्र कृषि की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक महत्ता को

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
Vol. 4, Issue 1, July 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

उजागर करते हैं। विदेशी यात्री मेगास्थनीज़, फा-ह्यान और ह्वेनसांग ने भी भारतीय कृषि की समृद्धि और प्रचुरता का उल्लेख किया है।

अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि थी, जिसे वैदिक साहित्य में "अन्नस्य मूलं कृषि" कहकर उसके केन्द्रीय महत्व को रेखांकित किया गया है। कृषि केवल जीवन-निर्वाह का साधन नहीं रही, बल्कि राज्य की राजस्व व्यवस्था, स्थायी बस्तियों और नगरीकरण की नींव भी बनी। कृषि अधिशेष के विकास से शिल्प और व्यापार को प्रोत्साहन मिला तथा प्रारंभिक वस्तु-विनिमय प्रणाली धीरे-धीरे संगठित मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हुई; मौर्य और गुप्त काल में भूमि-कर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था और धातु मुद्राओं ने व्यापारिक लेन-देन को व्यापक बनाया।[i] अधिशेष उत्पादन ने परिवहन और व्यापार मार्गों के विकास को भी गति दी, जिससे उत्तरापथ, दक्षिणापथ और समुद्री मार्गों का महत्व बढ़ा तथा ताम्रलिप्त, मुजिरिस और भरूच जैसे बंदरगाह प्रमुख व्यापारिक केंद्र बने। क्षेत्रीय कृषि-विशेषीकरण जैसे गंगा के मैदान में धान-गेहूँ और दक्कन में कपास ने अंतर व्यापार और नगरीकरण को सुदृढ़ किया।[ii]

कृषि ने प्राचीन भारतीय समाज की संरचना और सांस्कृतिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया। पेशागत आधार पर विकसित वर्णव्यवस्था में वैश्य वर्ग कृषि, पशुपालन और व्यापार से जुड़ा, जबकि कृषक वर्ग उत्पादन और कर-प्रणाली के माध्यम से राज्य शक्ति का आधार बना; भूमि संपत्ति प्रतिष्ठा और राजनीतिक प्रभाव का प्रतीक बन गई।[iii] कृषि की श्रमप्रधान प्रकृति ने श्रमिक और दास वर्ग को जन्म दिया, जिससे उत्पादन की निरंतरता बनी रही, किंतु सामाजिक असमानता भी सुदृढ़ होती चली गई। कृषि अधिशेष पर आधारित शिल्प और व्यापार ने वाराणसी, पाटलिपुत्र और उज्जैन जैसे नगरों को समृद्ध बनाया, जिसकी प्रशंसा विदेशी यात्रियों ने भी की।[iv] साथ ही, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में अन्न को "प्राण का आधार" माना गया; ऋतुचक्र, फसल उत्सव और यज्ञ-हवन जैसी परंपराएँ कृषि उपज पर आधारित रहीं, जिससे स्पष्ट होता है कि कृषि ने प्राचीन भारत को आर्थिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी संगठित किया।

2. प्राथमिक स्रोत

प्राचीन भारत की कृषि, शिल्प उत्पादन एवं बाजार अर्थव्यवस्था के अध्ययन के लिए उपलब्ध प्राथमिक स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये स्रोत तत्कालीन समाज, आर्थिक गतिविधियों, व्यापारिक संगठन, कर व्यवस्था, उत्पादन प्रणाली तथा राज्य की आर्थिक नीतियों का प्रत्यक्ष एवं समकालीन विवरण प्रस्तुत करते हैं। इन स्रोतों में वैदिक साहित्य, बौद्ध साहित्य, अभिलेख, विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृत्तांत तथा व्यापारिक विवरण प्रमुख हैं। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण में इन स्रोतों का व्यापक उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित प्राथमिक स्रोतों को आधार बनाया गया है।

2.1. Rigveda (ऋग्वेद)

ऋग्वेद भारतीय सभ्यता का सबसे प्राचीन उपलब्ध साहित्यिक स्रोत माना जाता है। इसका रचनाकाल लगभग 1500–1200 ईसा पूर्व माना जाता है। यद्यपि इसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक एवं वैदिक परम्पराओं का वर्णन है, तथापि इसमें तत्कालीन आर्थिक जीवन के अनेक महत्वपूर्ण संकेत प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में कृषि को जीवन का मूल आधार माना गया है। इसमें हल चलाने, बीज बोने, वर्षा पर निर्भर खेती, पशुपालन तथा कृषि उत्पादन का उल्लेख मिलता है। बैल कृषि कार्य का प्रमुख साधन था तथा गौधन को आर्थिक समृद्धि का प्रतीक माना गया। कृषि के साथ-साथ वस्तु-विनिमय (Barter System), पशुधन आधारित संपत्ति तथा वैश्य वर्ग की आर्थिक भूमिका का भी उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक वैदिक समाज कृषि एवं पशुपालन पर आधारित था तथा यही व्यवस्था आगे चलकर शिल्प एवं व्यापार के विकास का आधार बनी[v]।

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
Vol. 4, Issue 1, July 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

2.2. Kautilya's Arthashastra (कौटिल्य का अर्थशास्त्र)

कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा रचित *अर्थशास्त्र* प्राचीन भारतीय आर्थिक प्रशासन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं व्यवस्थित ग्रंथ है। इसका रचनाकाल चौथी–तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है तथा यह मौर्यकालीन प्रशासन और अर्थव्यवस्था का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इस ग्रंथ में कृषि को राज्य की आर्थिक समृद्धि का आधार बताया गया है। सिंचाई व्यवस्था, भूमि मापन, भूमि कर (Bhaga), कृषि ऋण, बीज, खाद, कृषि विस्तार तथा कृषि अधिकारियों के कार्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त शिल्प उद्योगों, कारीगरों, श्रेणी, व्यापारिक कर, आयात-निर्यात, बाजार नियंत्रण, मूल्य निर्धारण, गुणवत्ता नियंत्रण तथा मुद्रा व्यवस्था का भी व्यवस्थित उल्लेख मिलता है। अर्थशास्त्र में पण्याध्यक्ष, सुराध्यक्ष, अकाराध्यक्ष, सीताध्यक्ष जैसे अधिकारियों का उल्लेख मिलता है, जो कृषि, उद्योग एवं व्यापार के नियमन के लिए उत्तरदायी थे। इस प्रकार यह ग्रंथ प्राचीन भारत की कृषि, शिल्प उत्पादन तथा बाजार अर्थव्यवस्था के अध्ययन का सबसे प्रामाणिक प्राथमिक स्रोत है[vi]।

2.3. जातक कथाएँ

जातक कथाएँ बौद्ध साहित्य का महत्वपूर्ण भाग हैं जिनमें बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबंधित लगभग 547 कथाएँ संकलित हैं। यद्यपि इनका उद्देश्य नैतिक शिक्षा देना था, फिर भी इनमें तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का अत्यंत यथार्थ चित्रण मिलता है। जातकों में व्यापारी वर्ग, शिल्पकार, कृषक, साहूकार, जहाज निर्माण, समुद्री व्यापार, लंबी व्यापारिक यात्राएँ तथा व्यापारिक संघों का विस्तृत उल्लेख है। इन कथाओं से ज्ञात होता है कि भारतीय व्यापारी मध्य एशिया, श्रीलंका तथा दक्षिण-पूर्व एशिया तक व्यापार करते थे। अनेक कथाओं में वाराणसी, श्रावस्ती, राजगृह, तक्षशिला तथा चम्पा जैसे व्यापारिक नगरों का वर्णन मिलता है। जातक कथाएँ यह भी स्पष्ट करती हैं कि शिल्पकार केवल उत्पादक नहीं थे, बल्कि संगठित श्रेणियों में कार्य करते थे तथा उत्पादन, गुणवत्ता एवं व्यापार पर उनका महत्वपूर्ण नियंत्रण था। इस कारण जातक साहित्य प्राचीन भारतीय बाजार अर्थव्यवस्था के अध्ययन का अत्यंत उपयोगी प्राथमिक स्रोत है[vii]।

2.4. अशोक के शिलालेख

सम्राट अशोक के शिलालेख तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखीय स्रोत हैं। ये भारत, नेपाल, पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा बांग्लादेश के विभिन्न भागों में प्राप्त हुए हैं। इन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि मौर्य प्रशासन ने राजमार्गों का निर्माण कराया, वृक्ष लगवाए, कुएँ खुदवाए तथा यात्रियों एवं व्यापारियों के लिए विश्राम गृहों की व्यवस्था की। अशोक ने व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा तथा जनकल्याण पर विशेष बल दिया। शिलालेखों में प्रशासनिक व्यवस्था, कर प्रणाली, सार्वजनिक निर्माण तथा आर्थिक गतिविधियों के संरक्षण के प्रमाण मिलते हैं। यद्यपि इनका मुख्य उद्देश्य धम्म का प्रचार था, फिर भी इनसे तत्कालीन आर्थिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है।[viii]

2.5. Periplus of the Erythraean Sea

Periplus of the Erythraean Sea प्रथम शताब्दी ईस्वी में एक यूनानी व्यापारी द्वारा लिखा गया समुद्री व्यापार संबंधी ग्रंथ है। यह भारत तथा रोमन साम्राज्य के मध्य समुद्री व्यापार का प्रत्यक्ष विवरण प्रस्तुत करता है।

इस ग्रंथ में भारतीय बंदरगाहों जैसे मुजिरिस (Muziris), भरुकच्छ (Barygaza) तथा ताम्रलिप्त (Tamralipti) का विस्तार से वर्णन मिलता है। इसमें बताया गया है कि भारत से मसाले, काली मिर्च, हाथीदांत, मोती, बहुमूल्य पत्थर, रेशमी एवं सूती वस्त्र तथा धातु उत्पादों का निर्यात किया जाता था, जबकि सोना, चाँदी, शराब तथा विलासिता की वस्तुओं का आयात होता था। यह ग्रंथ भारतीय समुद्री व्यापार, व्यापारिक मार्गों, बंदरगाहों तथा विदेशी व्यापारिक संबंधों का सबसे महत्वपूर्ण समकालीन स्रोत माना जाता है।[ix]

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
Vol. 4, Issue 1, July 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

2.6. Chinese Travellers: Fa-Hien and Xuanzang (फाह्यान एवं ह्वेनसांग)

फाह्यान (399–414 ई.) तथा ह्वेनसांग (629–645 ई.) भारत आने वाले दो प्रमुख चीनी बौद्ध यात्री थे। इनके यात्रा-वृत्तांत तत्कालीन भारत की सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति का प्रत्यक्ष विवरण प्रस्तुत करते हैं। फाह्यान ने गुप्तकालीन भारत की समृद्ध कृषि व्यवस्था, सुरक्षित व्यापारिक मार्गों, नगरों की समृद्धि तथा व्यापारिक गतिविधियों का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा कि भारतीय समाज आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था तथा बाजारों में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध थीं।

ह्वेनसांग ने हर्षकालीन भारत के नगरों, कृषि व्यवस्था, शिल्प उद्योग, व्यापारिक गतिविधियों, शिक्षा केन्द्रों तथा अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों का विस्तृत वर्णन किया है। उनके विवरण से ज्ञात होता है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कृषि एवं शिल्प उत्पादन अत्यधिक विकसित था तथा आंतरिक एवं बाह्य व्यापार दोनों ही समृद्ध अवस्था में थे। इन दोनों यात्रियों के विवरण प्राचीन भारत की आर्थिक संरचना, नगर जीवन तथा व्यापारिक व्यवस्था के अध्ययन के लिए अत्यंत विश्वसनीय प्राथमिक स्रोत माने जाते हैं।[x]

उपरोक्त प्राथमिक स्रोत प्राचीन भारत की कृषि, शिल्प उत्पादन एवं बाजार अर्थव्यवस्था के अध्ययन के लिए आधारभूत प्रमाण प्रदान करते हैं। ऋग्वेद कृषि एवं पशुपालन आधारित अर्थव्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप प्रस्तुत करता है, अर्थशास्त्र राज्य नियंत्रित आर्थिक व्यवस्था का व्यवस्थित विवरण देता है, जातक कथाएँ व्यापार एवं शिल्प संगठनों का सामाजिक चित्र प्रस्तुत करती हैं, अशोक के शिलालेख प्रशासनिक एवं आर्थिक नीतियों के अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध कराते हैं, *Periplus of the Erythraean Sea* समुद्री एवं विदेशी व्यापार का प्रत्यक्ष विवरण प्रदान करता है, जबकि फाह्यान एवं ह्वेनसांग के यात्रा-वृत्तांत कृषि, शिल्प एवं बाजार व्यवस्था की समकालीन स्थिति का विश्वसनीय वर्णन करते हैं। इन सभी स्रोतों के समन्वित अध्ययन से प्राचीन भारत की आर्थिक संरचना, व्यापारिक नेटवर्क तथा सामाजिक-आर्थिक विकास का समग्र एवं प्रामाणिक विश्लेषण संभव होता है।

3. शिल्प उत्पादन और उद्योग

प्राचीन भारत की आर्थिक और सांस्कृतिक समृद्धि में शिल्प उत्पादन और उद्योगों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही। कृषि जहाँ अर्थव्यवस्था का आधार थी, वहीं शिल्पकला ने उसे विविधता और अंतर्राष्ट्रीय पहचान प्रदान की। हड़प्पा सभ्यता से लेकर गुप्त काल तक कुम्हारी, धातु शिल्प, वस्त्र, आभूषण और मूर्तिकला जैसे उद्योग विकसित हुए, जिनकी उत्कृष्ट कारीगरी 'नर्तकी की प्रतिमा', अशोक स्तंभ और गुप्तकालीन मूर्तियों में स्पष्ट दिखाई देती है।[xi] शिल्प वस्तुएँ न केवल घरेलू उपयोग बल्कि व्यापार और निर्यात का भी प्रमुख माध्यम थीं, जिससे भारत प्राचीन विश्व में एक प्रतिष्ठित व्यापारिक शक्ति के रूप में उभरा। इस प्रकार शिल्प उत्पादन ने आर्थिक विकास के साथ-साथ भारतीय संस्कृति और सामाजिक चेतना को भी सुदृढ़ किया।[xii]

सारणी.1: प्राचीन भारत की शिल्प परंपराएँ

काल / सभ्यता	प्रमुख शिल्पकला / उद्योग	विशेषताएँ और उपलब्धियाँ
हड़प्पा सभ्यता (2500–1500 ई.पू.)	कुम्हारी, धातु शिल्प, मनके निर्माण, वस्त्र उद्योग	नर्तकी की प्रतिमा (कांस्य), चित्रित मृद्भांड, कपास की बुनाई, आभूषण निर्माण में दक्षता
वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल (1500–600 ई.पू.)	लौह धातु शिल्प, कृषि औजार, हथियार निर्माण	लोहे के औजारों का उपयोग, अथर्ववेद और शुल्बसूत्र में धातु कार्य का उल्लेख
महाजनपद काल (600–321 ई.पू.)	शिल्प उद्योग का संगठन, शहरी शिल्प	नगरों के उदय के साथ कारीगर गिल्ड (श्रेणियाँ) विकसित; हस्तशिल्प व वस्त्र उत्पादन में वृद्धि
मौर्य काल (321–185 ई.पू.)	स्थापत्य शिल्प, पत्थर कला, धातु शिल्प	अशोक स्तंभ, शिलालेख, पॉलिश युक्त पत्थर, उत्कृष्ट स्थापत्य कला

गुप्त एवं उत्तरगुप्त काल (320–550 ई.)	मूर्तिकला, मंदिर वास्तुकला, स्वर्ण मुद्राएँ	अजंता-एलोरा गुफाएँ, दशावतार मंदिर, कलात्मक स्वर्ण मुद्राएँ, शिल्प परंपरा का "सुवर्णयुग"

3.1. शिल्प उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र

प्राचीन भारत में शिल्प उत्पादन बहुआयामी और विविधतापूर्ण था, जिसने घरेलू आवश्यकताओं के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वस्त्र उद्योग प्रमुख था, वाराणसी के रेशमी व ब्रोकेड, कांची के सूती-रेशमी तथा गांधार और मथुरा के ऊनी वस्त्र देश-विदेश में प्रसिद्ध थे; ग्रीक यात्री मेगास्थनीज़ ने भारतीय वस्त्र तकनीक की प्रशंसा की और इनका निर्यात मिस्र, रोम व चीन तक होता था।[xiii] धातु, हस्तकला तथा मिट्टी-पत्थर के शिल्प ने तकनीकी और कलात्मक कौशल को सुदृढ़ किया; कांस्य-ताम्र की मूर्तियाँ, लौह कृषि उपकरण व युद्ध सामग्री तथा दिल्ली का लौह स्तंभ इसकी उत्कृष्ट मिसाल हैं।[xiv] आभूषण उद्योग सोना, चाँदी, हीरे और मोतियों से बने आभूषण वैशाली, उज्जैन और तक्षशिला में विकसित होकर रोमन साम्राज्य तक निर्यात हुए, जबकि अमरावती, सांची, मथुरा की मूर्तिकला तथा अजंता-एलोरा की गुफाएँ भारतीय कला और सौंदर्यबोध की पराकाष्ठा को दर्शाती हैं। इस प्रकार शिल्प उत्पादन ने प्राचीन भारत को आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक वैभव दोनों प्रदान किए।[xv]

सारणी 2: प्राचीन भारत में शिल्प उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र

क्रमांक	क्षेत्र/नगर	प्रमुख शिल्प/उद्योग	प्रमाण/उदाहरण
1.	वाराणसी (काशी)	ब्रोकेड और रेशमी वस्त्र	विश्वप्रसिद्ध बनारसी साड़ी, विदेशी व्यापार (राय, 2017)
2.	कांची (दक्षिण भारत)	रेशमी व सूती कपड़े	अंतर्राष्ट्रीय निर्यात, तमिल साहित्य में उल्लेख (उपाध्याय, 2015)
3.	गांधार और मथुरा	ऊनी वस्त्र	मेगास्थनीज़ का विवरण, गांधार मूर्तिकला से वस्त्रों की झलक (शर्मा, 2010)
4.	दिल्ली	लौह शिल्प	दिल्ली का लौह स्तंभ (चतुर्वेदी, 2008)
5.	उज्जैन, वैशाली, तक्षशिला	आभूषण निर्माण	रोमन साम्राज्य तक निर्यात, मोती-रत्नों का प्रयोग (मिश्र, 2012)
6.	अमरावती, सांची, मथुरा	पत्थर मूर्तिकला, स्तूप	अमरावती स्तूप, सांची स्तूप की मूर्तिकला (सिंह, 2016)
7.	अजंता-एलोरा, गुप्तकालीन केंद्र	वास्तुकला व मंदिर शिल्प	अजंता-एलोरा की गुफाएँ, नागर शैली मंदिर (शर्मा, 2010)

3.2. शिल्प और रोजगार

प्राचीन भारत में शिल्पकला केवल कला तक सीमित न होकर रोजगार का एक प्रमुख स्रोत थी, जिसने कृषि-प्रधान समाज में धातुकार, कुम्हार, बढ़ई, बुनकर, स्वर्णकार और नक्काशीकार जैसे शिल्पकारों को आजीविका प्रदान की। शिल्प गिल्डों और श्रेणी संगठनों ने उत्पादन और विपणन को संगठित किया तथा मौर्य–गुप्त काल के राज्य संरक्षण से शिल्प उद्योगों को स्थायित्व मिला।[xvi] विदेशी मांग और व्यापार ने रोजगार अवसर बढ़ाए, जिससे शिल्पकला ने कृषि अर्थव्यवस्था को संतुलन देते हुए समाज को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाया।[xvii]

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
Vol. 4, Issue 1, July 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

सारणी 3: प्राचीन भारत में शिल्प और रोजगार

क्रमांक	शिल्प क्षेत्र	रोजगार के प्रकार	प्रमाण/स्रोत
1.	धातु शिल्प	धातुकार, लौहकार, ताम्रकार	दिल्ली का लौह स्तंभ, कौटिल्य अर्थशास्त्र
2.	मिट्टी शिल्प (कुम्हार)	मृद्भांड, चित्रित पात्र, दैनिक उपयोग की वस्तुएँ	हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की कुम्हारी कलाकृतियाँ
3.	वस्त्र उद्योग	बुनकर, कपड़ा निर्माताएँ	वाराणसी और कांची के रेशमी वस्त्र, मेगास्थनीज़ का विवरण
4.	आभूषण निर्माण	स्वर्णकार, रत्नकार	वैशाली, उज्जैन और तक्षशिला, रोमन साम्राज्य में निर्यात
5.	स्थापत्य और पत्थर शिल्प	नक्काशीकार, वास्तुकार	अजंता-एलोरा गुफाएँ, सांची व अमरावती के स्तूप
6.	शिल्प गिल्ड प्रणाली	प्रशिक्षण, विपणन, संरक्षण	गिल्ड प्रणाली के नियम और संरचना
7.	राजकीय कार्यशालाएँ	शिल्पकारों को सरकारी रोजगार	मौर्य और गुप्त कालीन कारखाने

प्राचीन भारत में शिल्प उद्योग केवल कला तक सीमित न होकर आर्थिक और सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग था, जिसने विभिन्न शिल्प क्षेत्रों के माध्यम से व्यापक रोजगार सृजित किया और गिल्ड तथा राजकीय संरक्षण के कारण स्थायित्व प्राप्त किया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से शिल्पकारों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई और भारत की वैश्विक पहचान को बल मिला, जबकि वस्त्र उद्योग, धातु शिल्प, आभूषण निर्माण तथा मिट्टी-पत्थर के शिल्प ने घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक धरोहर और तकनीकी दक्षता को स्थापित किया। इस प्रकार शिल्प उद्योगों ने रोजगार, संगठनात्मक ढाँचे और वैश्विक व्यापार के माध्यम से प्राचीन भारत की आर्थिक शक्ति और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा को सुदृढ़ किया।

4. बाज़ार व्यवस्था और व्यापार

प्राचीन भारत की आर्थिक संरचना में बाज़ार व्यवस्था और व्यापार का विशेष स्थान रहा है। कृषि और शिल्प उत्पादन के विस्तार ने न केवल आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को जन्म दिया, बल्कि विभिन्न नगरों और क्षेत्रों के बीच वस्तुओं के आदान-प्रदान की आवश्यकता को भी उत्पन्न किया। यही कारण था कि समय के साथ स्थानीय हाटों से लेकर विशाल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तक की परंपरा विकसित हुई। इस व्यापार व्यवस्था ने प्राचीन भारत की समृद्धि, शहरीकरण और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया।

4.1 बाज़ारों का विकास

प्राचीन भारत में बाज़ारों का विकास क्रमिक रूप से ग्राम-स्तरीय हाटों और साप्ताहिक मंडियों से प्रारंभ होकर शहरी और अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक केंद्रों तक पहुँचा, जहाँ ये न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के भी प्रमुख केंद्र बने। प्रारंभिक काल में हाटों के माध्यम से किसान, शिल्पकार और व्यापारी वस्तु-विनिमय करते थे, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को स्थिरता मिलती थी।[xviii] मौर्य काल में शहरीकरण के साथ बाजार व्यवस्था अधिक संगठित हुई और पाटलिपुत्र, उज्जैन, वाराणसी, तक्षशिला तथा कांची जैसे नगर प्रमुख व्यापारिक केंद्र बने, जहाँ नगराध्यक्ष और पण्याध्यक्ष जैसे अधिकारी बाजार प्रबंधन, गुणवत्ता नियंत्रण और कर-संग्रह की निगरानी करते थे।[xix] गुप्त काल में यह प्रणाली और सुदृढ़ हुई; सुनियोजित मंडियाँ, गिल्ड व्यवस्था और समुद्री व स्थल मार्गों के विस्तार ने ताम्रलिप्त, मुजिरिस और कांची जैसे बंदरगाह नगरों को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ा, जहाँ से भारतीय वस्त्र, मसाले और रत्न रोम तथा दक्षिण-पूर्व एशिया तक निर्यात

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
VOL. 4, ISSUE 1, JULY 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

किए गए। इस प्रकार ग्राम-हाटों से लेकर अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक का यह विकास प्राचीन भारत की आर्थिक शक्ति, सामाजिक गतिशीलता और सांस्कृतिक समृद्धि को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करता है।

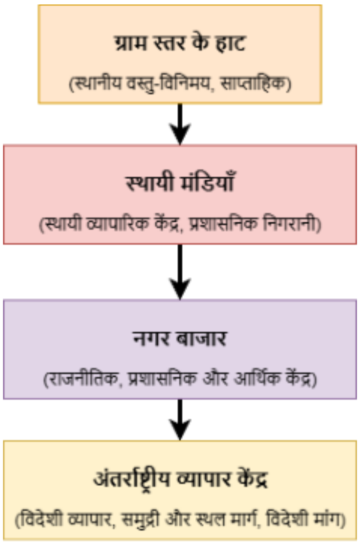

चित्र सं.1: प्राचीन भारत में बाजारों का विकास

प्राचीन भारत में व्यापार के साधन और प्रणाली का विकास वस्तु-विनिमय से शुरू होकर स्थायी मंडियों और नगर बाजारों तक विस्तृत हुआ। प्रारंभिक ग्राम-स्तरीय हाटों में कृषक, शिल्पकार और व्यापारी अपने उत्पादों का आदान-प्रदान करते थे, लेकिन शहरीकरण और प्रशासनिक संरचना के विकास से नगर बाजारों ने आर्थिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र का रूप लिया। स्थल और समुद्री मार्गों के विस्तार ने भारत को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केंद्र के रूप में स्थापित किया, जहाँ आभूषण, वस्त्र और मसालों की विदेशी मांग ने वस्तु-विनिमय की सीमाएँ स्पष्ट कर दीं और मुद्रा प्रचलन की आवश्यकता उत्पन्न हुई; मौर्यकाल में पंच-चिह्नित सिक्कों और गुप्तकाल में स्वर्ण मुद्राओं ने व्यापार में विश्वास और स्थिरता प्रदान की। व्यापार की बढ़ती जटिलता ने साहूकार और बैंकर जैसे प्रारंभिक वित्तीय संस्थानों को विकसित किया, जिससे व्यापार संगठित, गतिशील और टिकाऊ बना।

आंतरिक और बाह्य व्यापार कृषि और शिल्प उत्पादन पर आधारित क्षेत्रीय विशेषज्ञता से विकसित हुआ। गांधार और मथुरा वस्त्र, वाराणसी रेशमी-सूती कपड़े, दक्षिण भारत मसाले, मोती और हाथीदांत तथा बिहार-बंगाल धान्य उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे। ग्राम हाट, साप्ताहिक मंडियाँ और नगर बाजार ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था को जोड़ते थे और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करते थे। स्थल मार्ग जैसे उत्तरापथ और दक्षिणापथ और समुद्री मार्गों ने आंतरिक और बाह्य व्यापार को गति दी, जहाँ से रोमन, अरब, चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया तक व्यापारिक संपर्क स्थापित हुए। प्रमुख बंदरगाह ताम्रलिप्त, कांची, मुजिरिस और भृगुकच्छ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के केंद्र बने, और इन मार्गों ने वस्तुओं के साथ-साथ धार्मिक विचार, कला और संस्कृति के प्रसार को भी सुनिश्चित किया।[xx] इस प्रकार, प्राचीन भारत की बाजार व्यवस्था ने आर्थिक समृद्धि, सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक प्रभाव के लिए आधार तैयार किया।

सारणी 4: बाज़ार व्यवस्था के बहुआयामी प्रभाव

प्रभाव का क्षेत्र	मुख्य विवरण	उदाहरण / प्रमाण

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
Vol. 4, Issue 1, July 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

आर्थिक	नगरों और स्थायी बाजारों का विकास; व्यापारिक लेन-देन का सुगठित रूप	पाटलिपुत्र, उज्जैन, वाराणसी के बाजार
सामाजिक	जाति और श्रेणी आधारित वर्गों को रोजगार; शिल्पकार और व्यापारी वर्ग का उत्थान	गिल्ड प्रणाली, श्रमिक वर्ग का संगठन
सांस्कृतिक	विदेशी संस्कृतियों के साथ आदान-प्रदान; कला, वास्तुकला और साहित्य में समृद्धि	गंधार कला में ग्रीक प्रभाव; अजंता-एलोरा चित्रकला
अंतर्राष्ट्रीय	भारतीय वस्त्र, मसाले और आभूषण का निर्यात; वैश्विक पहचान	रोमन साम्राज्य और चीन के साथ व्यापार; फाह्यान और ह्वेनसांग की टिप्पणियाँ

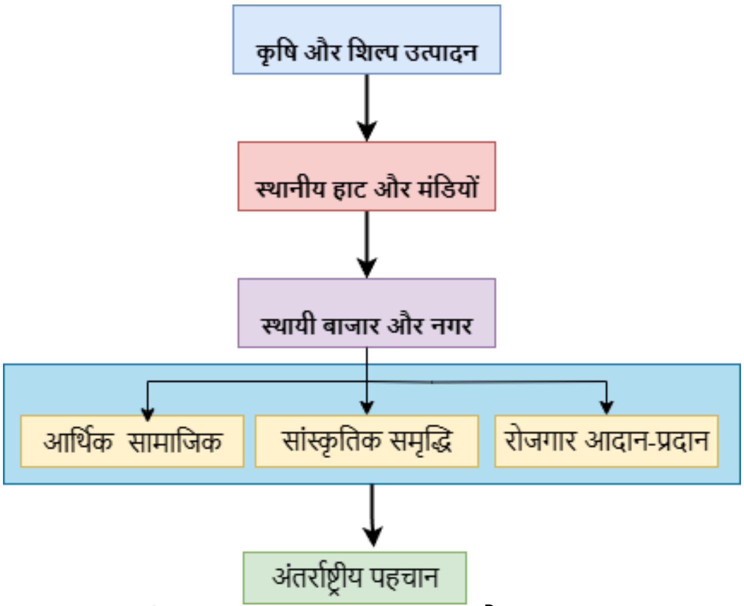

चित्र सं.2: बाज़ार व्यवस्था और प्रभाव

5. कृषि, शिल्प और बाजार का परस्पर संबंध

प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था के तीन स्तंभ कृषि, शिल्प और बाजार आपस में गहराई से जुड़े हुए थे। कृषि ने खाद्य और कच्चे माल की आपूर्ति की, शिल्प उत्पादन ने इन कच्चे माल को परिष्कृत कर मूल्यवर्धित उत्पादों का निर्माण किया, और बाजार ने दोनों को एक-दूसरे से जोड़ने का कार्य किया।

अर्थव्यवस्था में कृषि, शिल्प और व्यापार एक त्रिकोणीय परस्पर निर्भर संरचना के रूप में विकसित हुई, जिसमें प्रत्येक घटक दूसरे पर निर्भर था। कृषि अधिशेष शिल्पकारों और व्यापारियों को कच्चा माल और आजीविका प्रदान करता था, जबकि शिल्प उत्पादन ने कृषि उपज का मूल्यवर्धन कर इसे व्यापार योग्य बनाया। वस्त्र, धातु उपकरण और अन्य शिल्प वस्तुएँ न केवल घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं, बल्कि नगरों और बाह्य व्यापार के विकास को भी प्रोत्साहित करती थीं। स्थानीय हाट और स्थायी बाजार इस परस्पर संबंध का केंद्र थे, जहाँ किसान और शिल्पकार अपने उत्पादों का आदान-प्रदान करते थे।

राज्य की आर्थिक शक्ति भी कृषि, शिल्प और व्यापार पर आधारित कर-संग्रह से सुनिश्चित होती थी। मौर्य और गुप्त काल में सुव्यवस्थित कर प्रणाली, बाजार निगरानी और व्यापार नियंत्रण ने प्रशासनिक स्थिरता को सुदृढ़ किया, जिससे राज्य सेना, प्रशासन, सार्वजनिक निर्माण और कला-साहित्य संरक्षण जैसी गतिविधियाँ सुचारु रूप से संचालित हुईं। गुप्तकाल में कृषि उत्पादन, शिल्पकला और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलन ने आर्थिक समृद्धि को चरम पर पहुँचाया, जिसके परिणामस्वरूप स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन, नगरों का उत्कर्ष

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
Vol. 4, Issue 1, July 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

और सांस्कृतिक वैभव विकसित हुआ।[xxi] इस प्रकार, कृषि, शिल्प, व्यापार और राज्य के बीच परस्पर निर्भरता ने प्राचीन भारत की आर्थिक संरचना को स्थिर, समृद्ध और संतुलित बनाया।

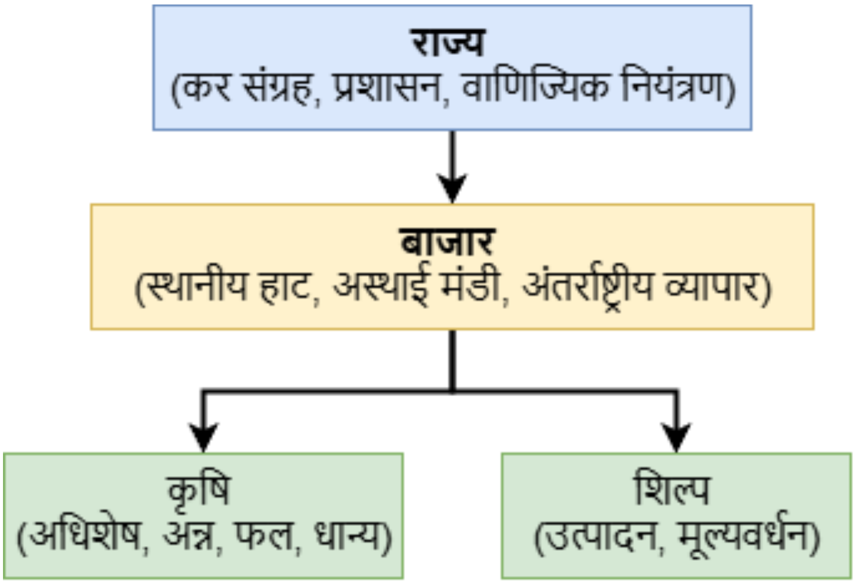

चित्र सं.3: कृषि, शिल्प, व्यापार और राज्य के बीच परस्पर निर्भरता

कृषि, शिल्प और बाजार का त्रिकोणीय संबंध केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को भी प्रबल बनाता था। कृषि अधिशेष शिल्पकारों और व्यापारियों को आजीविका देता था, जिससे उनका समाज में सम्मान बढ़ता था। शिल्पकला नगरों और धर्मस्थलों को सजाती और शहरों की सांस्कृतिक समृद्धि में योगदान करती थी, जबकि व्यापारी वर्ग ने नगरों के वैभव और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा दिया।[xxii] विदेशी व्यापार भारत को रोम, चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया से जोड़ता था, जिससे वस्त्र, मसाले और शिल्पकला का आदान-प्रदान और विदेशी प्रभाव भारतीय कला में सम्मिलित हुए। राज्य द्वारा कर-संग्रह से मंदिर, स्तूप, शिक्षण संस्थान और पुस्तकालयों का निर्माण संभव हुआ, जिससे ज्ञान और साहित्य को बढ़ावा मिला।[xxiii] इस प्रकार, कृषि, शिल्प और बाजार का संतुलित त्रिकोण प्राचीन भारत की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समृद्धि का आधार था।

6. सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव

अर्थव्यवस्था केवल उत्पादन और व्यापार तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसका गहरा सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव भी था, जिसमें कृषि, शिल्प और बाजार का त्रिकोणीय संबंध केंद्र में था। कृषि अधिशेष और शिल्प उत्पादन ने नगर जीवन और नगर संस्कृति को विकसित किया; स्थायी हाट, मंडियाँ और नगर केवल निवास स्थल नहीं, बल्कि आर्थिक, प्रशासनिक, धार्मिक और सांस्कृतिक केंद्र बने, जहाँ कृषक, शिल्पकार, व्यापारी और अधिकारी मिलकर समाज को संगठित करते थे।[xxiv] गिल्ड और श्रेणी प्रणालियों ने शिल्पकारों और व्यापारियों को संगठन, संरक्षण और सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की, जिससे जीवन-शैली बहुआयामी और सामाजिक गतिशीलता के अवसर बढ़े। इसके साथ ही बाह्य व्यापार ने ग्रीक, रोमन, चीनी और मध्य एशियाई संस्कृतियों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान को संभव बनाया, जिससे कला, वास्तुकला, विज्ञान और धार्मिक विचारों में समन्वय और नवाचार हुआ; भारतीय वस्त्र, मसाले, रत्न और धातु शिल्प विदेशों तक पहुँचे, जबकि विदेशी तकनीक और शैलियों का प्रभाव नगरों और शिल्पकला केंद्रों में दिखा।[xxv] इस प्रकार कृषि, शिल्प और व्यापार का संतुलित त्रिकोण नगर जीवन, सामाजिक प्रतिष्ठा और अंतर्राष्ट्रीय संपर्क के माध्यम से प्राचीन भारत को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध और वैश्विक रूप से प्रभावशाली बनाता था।

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
Vol. 4, Issue 1, July 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

7. निष्कर्ष

प्राचीन भारत की आर्थिक व्यवस्था एक त्रिकोणीय तंत्र पर आधारित थी, जिसमें कृषि, शिल्प और व्यापार एक-दूसरे के पूरक और सहायक थे। कृषि अधिशेष ने शिल्प और व्यापार को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ राज्य की कर-संग्रह प्रणाली और राजनीतिक स्थिरता के लिए आधार प्रदान किया। मौर्यकालीन सुव्यवस्थित कर प्रणाली और गुप्तकालीन आर्थिक संतुलन इस अर्थव्यवस्था और राजकीय शक्ति के गहन संबंध को दर्शाते हैं। नगराध्यक्ष और पत्तनाध्यक्ष जैसे अधिकारी बाजार की निगरानी और गुणवत्ता नियंत्रण करते थे, जिससे वाणिज्य केवल आर्थिक साधन ही नहीं बल्कि राजनीतिक और सामाजिक नियंत्रण का माध्यम भी बना। गुप्तकालीन 'सुवर्णयुग' में कृषि उत्पादन की वृद्धि, शिल्पकला की विविधता और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने भारत को वैश्विक स्तर पर आर्थिक और सांस्कृतिक शक्ति के रूप में स्थापित किया। शिल्पकार और व्यापारी वर्ग की प्रतिष्ठा बढ़ी और गिल्ड एवं श्रेणी संगठनों ने उनका संगठन और संरक्षण सुनिश्चित किया। विदेशी व्यापार ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया, जिससे कला, साहित्य और जीवन-शैली में परिष्कार और विविधता आई। इस प्रकार, त्रिकोणीय आर्थिक संरचना ने न केवल समृद्धि, बल्कि सामाजिक गतिशीलता, नगर संस्कृति और सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए भी प्रेरणा दी, जिससे भारत प्राचीन विश्व में विशिष्ट और प्रभावशाली स्थान पर पहुँचा।

---

[i] Sharma, R. S. (1987). Urban Decay in India (c. 300–c. 1000). Delhi: Munshiram Manoharlal.
[ii] Chakravarti, Ranabir. (2006). Exploring Early India: Up to c. AD 1300. Delhi: Macmillan.
[iii] Thapar, Romila. (2002). Early India: From the Origins to AD 1300. New Delhi: Penguin Books / University of California Press.
[iv] Altekar, A. S. (1937). The Coinage of the Gupta Empire. Varanasi: Banaras Hindu University Press.
[v] Griffith, Ralph T. H. *The Rigveda*. Delhi: Motilal Banarsidass, Reprint Edition.
[vi] Kangle, R. P. *The Kautiliya Arthashastra*. Part I–III. Delhi: Motilal Banarsidass, 1965.
[vii] Cowell, E. B. (Ed.). The Jataka or Stories of the Buddha's Former Births. Cambridge University Press, 1895–1907.
[viii] Hultzsch, E. *Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. I: Inscriptions of Asoka*. Oxford: Clarendon Press, 1925.
[ix] Schoff, W. H. (Trans.). The Periplus of the Erythraean Sea. New York: Longmans, Green & Co., 1912.
[x] Beal, Samuel (Trans.). Si-Yu-Ki: Buddhist Records of the Western World (Xuanzang). London: Trübner & Co., 1884.
[xi] शर्मा, आर. एस. (2010). भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था का इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
[xii] सिंह, सुरेश. (2016). भारतीय मूर्तिकला का विकास. नई दिल्ली: साहित्य भवन।
[xiii] उपाध्याय, बी. (2015). भारत की सांस्कृतिक धरोहर. इलाहाबाद: साहित्य भवन।
[xiv] चतुर्वेदी, वी. (2008). प्राचीन भारत में उद्योग और व्यापार. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
[xv] मिश्र, राधाकृष्ण. (2012). भारतीय शिल्पकला का स्वर्णयुग: गुप्तकालीन परिप्रेक्ष्य. वाराणसी: गंगा प्रकाशन।
[xvi] रे, इरावती करवे. (2006). प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास. मुंबई: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
[xvii] उपाध्याय, वीरेन्द्रनाथ. (2015). वैदिक संस्कृति और धातुकला. वाराणसी: चौखंबा विद्याभवन।
[xviii] धर्मपाल. (2008). भारतीय ग्राम-व्यवस्था और उसका इतिहास. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।
[xix] दीक्षित, डी. पी. (1990). प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
[xx] सिन्हा, आर. (2002). प्राचीन भारत में व्यापार और सांस्कृतिक संपर्क. दिल्ली: भारत विकास पब्लिकेशन।
[xxi] शर्मा, आर. एस. (1993). भारतीय सामाजिक और आर्थिक इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

SHODH PRAKASHAN
An International Open Access, Peer Reviewed, Refereed Journal
ISSN : 2583-9861
Vol. 4, Issue 1, July 2026
Available Online : http://shodhprakashan.in/

[xxii] राय, शंकरदयाल. (2017). हड़प्पा संस्कृति और भारतीय शिल्प परंपरा. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
[xxiii] मिश्रा, आर. के. (2001). प्राचीन भारतीय समाज और संस्कति. दिल्ली: श्रीजन प्रकाशन।
[xxiv] शर्मा, रामशरण. (1987). भारत का प्राचीन सामाजिक और आर्थिक इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
[xxv] शर्मा, राम अवतार. (2010). भारतीय कला का इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।